स्त्री-समस्याओं की तहरीर कंधे पर बैठा था शाप

डॉ॰ शेख अफरोज फातेमा
सहायक प्राध्यापक
मौलाना आजाद कॉलेज ऑफ आर्ट्स
साइंस एंड कॉमर्स औरंगाबाद

अनादि अनंतकाल से वर्तमान तक। स्थितियों में बदलाव नहीं आया है। केवल युग बीते, परिस्थितियाँ बदली है, भूमिकाएँ बदली हैं। स्त्रियोंका का जीवन नहीं बदला। चाहे वह हाशिए के अंदर की स्त्री हो या बाहर की। हमेशा उनके अस्तित्व को नकारा गया है। उनके वजूद को 'छलावा' समझा गया। इसी स्त्री त्रासदी को ऐतिहासिक संदर्भों के साथ नाटककार मीराकांत ने अपने नाटक 'कंधे पर बैठा था शाप' में उजागर किया है।

स्त्री हमेशा उपेक्षित घटक रही। चाहे इतिहास में हो या राजनीतिक संदर्भों में उसे केवल शतरंज के मोहरों की तरह इस्तेमाल किया गया है। जीत का सेहरा तो हमेशा राजा के सर ही बनता है। 'कंधे पर बैठा था शाप या श्रूयते न तु दृश्यते' इस नाटक को लेकर नाटककार कहती हैं, 'छूटे हुए अव्यक्त पात्रों एवं स्थितियों की अभिव्यक्ति है जो या तो साहित्यिक मुख्यधारा का आंगन बन न सकी या फिर उसकी सरहद पर ही रही।'[1] नाटककार ने उन छूटे हुए पात्र एवं स्थितियों को अभिव्यक्त किया है।

प्रस्तुत नाटक कालिदास की मृत्यु का कथानक लिए हुए है। उनके अंतिम समय, मित्र कुमारदास के नगर जाना, अधूरी पद्य रचना पूर्ण करना, प्रेम-प्रसंग आदि घटनाओं को दर्शाता है। यह नाटक ऐतिहासिक जनश्रुतियों को आधार बनाकर लिखा गया है। नि:संदेह, यह ऐतिहासिक नाटक नहीं है। कालिदास की मृत्यु को लेकर इतिहास और साहित्य छुटपुट जनश्रुतियों के अलावा मौन साधे रहा। केवल कालिदास ही नहीं तो संस्कृत साहित्य के दो अमूल्य रत्नों का ऐसा करुण अंत। 'एक 'रघुवंशम्' के कालिदास तो दूसरे 'जानकीहरणम्' के कुमारदास। क्या इसे ही नाम दिया जाता है 'नियति'?'[2]

मृत्यु जीवन का अटल सत्य है। किंतु भारतीय साहित्य कालिदास की मृत्यु पर चुप्पी साधे बैठा है। यह मृत्यु आर्यावर्त में न होकर सिंहलद्वीप (श्रीलंका) में घटित हुई थी। वहाँ इस पर मौन नहीं है, 'लंकाद्वीप की प्राचीन परंपरागत कथाओं में एक मुख्य कथा है क्योंकि यह उनके तत्कालीन कवि हृदयेश नरेश से संबद्ध है। वे इसे इतिहास के सूत्र से भी जोड़ते हैं, जब यह कहते हैं कि आर्यावर्त के कवि कालिदास की समाधि आज भी श्रीलंका के दक्षिण में मौजूद है। श्रीलंका के नित्याराम विहार के भिक्षुओं का मत है कि कालिदास का समाधि-स्थल लंका के दक्षिण भाग के 'माटर' नामक स्थान में करिंदी नदी और सागर संगम के निकट है।'[3] जनश्रुतियों के आधार पर इस घटना का एक पक्ष उजागर होता है पर दूसरा पक्ष सदा की भाँति नेपथ्य में रहता है। इस दूसरे पक्ष को पाठक के सामने लाने का काम नाटककार ने अपनी प्रतिभा के बल पर

किया है।

'कालिदास, कुमारदास, कामिनी, विद्योत्तमा-नाटक के चार पात्रों के आधार जनश्रुति हैं। जबकि राजम्मा सहित अन्य सभी पात्र काल्पनिक हैं।'[4] नाटक का कथानक कालिदास की मृत्यु पर आधारित है। साथ ही स्त्री-अवहेलना और गणिकाओं की समस्या को प्रमुख रूप से दर्शाने का कार्य मीराकांत ने किया है। हमारे समाज में स्त्री अबला रही या देवी। वह कभी मनुष्य न बन पायी।

नाटक की शुरुआत से सिंहलद्वीप में कामिनी के कक्ष से होती है। कामिनी एक गणिका है। सिंहलनरेश कवि कुमारदास उसके यहाँ विशेष अतिथि के रूप में पधारते हैं। दोनों में प्रेम है। कामिनी सिंहलनरेश की पट्टरानी बनना चाहती है। वह यह भूल जाती है कि वह एक गणिका है। राजम्मा उसे अपने कर्तव्य की याद दिलाते हुए कहती है, 'हम जैसे स्त्रियों का जीवन एक लक्ष्य की कामना से सार्थक नहीं होता... कभी नहीं हुआ। हम ऐसे महापथ हैं पुत्री, जो कभी देहरियों तक नहीं पहुँचते। हमारे लिए यही प्रकोष्ठ है...यही अतिथिगृह।'[5] हमारा जीवन केवल आमोद-प्रमोद के लिए है, घर बसाना हमारे भाग्य में नहीं लिखा है। कामिनी अपने रूप-सौंदर्य और अपने सुंदर हदय पर गर्व करती है। कुमारदास उसे 'हीरकमणि' की उपमा देते हैं। उसके कक्ष में एक तख्ती टँगी है जिस पर एक अधूरी रचना है। यदि वह इस रचना को पूरी कर दे तो सिंहलनरेश कुमारदास विवाह करने का वचन देते हैं।

इसी स्वप्न में डूबी कामिनी प्रतिपल तख्ती को निहारती रहती कि इस अधूरी रचना को पूरा किस तरह किया जाए। ऐसे में ही कालिदास का सिंहलनगर आने का समाचार कुमारदास को मिलता है और वह प्रतीक्षारत है। कालिदास देवदत्त के हाथों कुमारदास को समाचार भिजवाकर कि वह उन्हें खोजने का प्रयास न करें, वह स्वयः उपस्थित होंगे।

रात्रि के समय कालिदास जलते दीपक को देख जिस भवन में प्रवेश करते हैं वह 'कामिनी' का है। वह साधारण वेश में है। वह उनके रहने का प्रबंध करवाती है। वह कक्ष में लगी अधूरी रचना को देखते हैं। कामिनी कहती है, 'इसका अधूरापन कोई पूरा नहीं कर पाया...मेरे जीवन का अधूरापन इसके पूरे होने पर टिका हुआ है।'[6] कालिदास आश्चर्यचकित हो घोर वंचना में पड़ जाते हैं, 'वही प्रतिज्ञा...वहीं चुनौती...वही अग्निपरीक्षा...एक ओर कालिदास...एक ओर विद्योत्तमा...भूमिकाएँ बदल गई हैं...कभी मैं भी इतना ही विवश हुआ था...कभी मैंने भी स्वयं को इतना निरुपाय पाया था...केवल इसलिए कि मैं किसी की ज्ञान की उपेक्षा पर खरा नहीं उतर पाया था। विद्योत्तमा के हाथों यह कालिदास कितना उपेक्षित, कितना अपनामित हुआ था उस दिन!'[7] कामिनी के रूप में उन्हें अपनी विवशता दिखाई देती है। वह उस रचना की पंक्तियों को पढ़ते ही नहीं, उसे पूरा भी करते हैं।

कमले कमलोत्पत्तिः श्रूयते न दुश्यते।
बाले तव मुखाम्बुजे दुष्टमिन्दीवरद्वयम।

अर्थात् कमल पर कमल की उत्पत्ति होती है, ऐसा सुना है पर देखा नहीं है। हे बाले तुम्हारे मुख-कमल पर मैंने आँखों के दो कमल देखे हैं...मुखकमल और आँखों के कमल...हुई न कमल पर कमल की उत्पत्ति!'[8] कामिनी का स्वप्न पूर्ण होता है। अब सिंहलनरेश से विवाह होगा। राजम्मा भी यही चाहती है। क्योंकि गणिका के भीतर भी एक स्त्रीमन होता है, जो सदैव घर बसाना चाहता है। किंतु यह रचना तो अतिथि ने पूर्ण की है यह भेद खुल गया तो सारे स्वप्न बिखर जाएँगे। प्रेम

 ISSN 0975-735X

की प्राप्ति, आकांक्षाएँ, गणिकाओं के भद्र और सम्मानपूर्ण जीवन की मोहलालसा में अतिथि के पेय में विष मिलाया जाता है। इस अवस्था में अतिथि कालिदास को काशीनरेश की पुत्री विद्योत्तमा याद आती है। विदुषी विद्योत्तमा का विवाह ग्रामीण, सरल, मूढ़ व्यक्ति कालिदास से होता है। वह पत्नी द्वारा तिरस्कृत होता है और वही तिरस्कार, उपेक्षा वरदान बन जाती है। वह काली की आराधना कर सरस्वती का वरदान प्राप्त कर विक्रमादित्य के नवरत्नों में सम्मान पाते हैं। उनके लिए पत्नी गुरु बन जाती है। वह उसे गुरु रूप में स्वीकार करते हैं। 'जिस स्त्री ने मेरे जीवन को कीर्ति के शिखर तक पहुँचाया...उसे गुरु के अतिरिक्त किसी अन्य रूप में अंगीकार करना मेरे लिए पाप होगा।'[9] वह पत्नी के रूप में विद्योत्तमा का परित्याग कर उसे केवल गुरु रूप में स्वीकार करते हैं।

नाटककार यह दर्शना चाहती है कि सदा की भाँति निर्णय एकल लिए जाते हैं। स्त्री सहमति के बिना और यहाँ भी यही हुआ, 'पत्नी के बारे में विचार किए बिना...(व्यंग से) निर्णय. ..हाँ निर्णय! पुरुष का एकल निर्णय...सदा की भाँति एकपक्षीय!'[10] पत्नी की मनोकामना का उपहास कर, उसकी इच्छाओं का अपमान करने के कारण विद्योत्तमा कालिदास को शाप देती है, 'जाओ तुम्हारे जीवन के अंत का कारण एक स्त्री ही हो...तुमने पत्नी की कामना का अपमान किया है...उस कामना का जिस पर उसका पूरा अधिकार है...अहंकार से भरे तुम्हारे इस जीवन का अंत उसके हाथों होगा, जिसे तुम और तुम्हारा समाज अबला कहता है और उसे अबला बने रहने पर विवश करता है...मेरा शाप व्यर्थ नहीं जाएगा महाकवि...कभी नहीं...कभी नहीं...।'[11] अंतिम समय में कालिदास पत्नी के वचन को याद कर विधि के विधान को स्वीकार करते हैं। इसमें कामिनी का कोई दोष नहीं है यह उनका मानना होता है। वह दर्द भरी मुस्कान से कहते हैं, 'जीवन के कर्म निष्फल नहीं होते, विद्योत्तमा की पीड़ा भी निष्फल नहीं हुई...विधि का विधान है ...(कामिनी की ओर संकेत) इस असहाय अबला का भी इसमें क्या दोष! दोष है तो विधि का ...नियति का...(फीकी हँसी हँसकर) विधि...नियति...ये दोनों भी स्त्रीवाचक हैं।'[12] इसके बीज नेपथ्य में वर्षों पहले बोये थे पत्नी विद्योत्तमा के हाथों शाप देकर। अपनी भूमि, अपने देश से दूर निकल आने के बाद भी वह शाप कालिदास के कंधों पर निरंतर बैठा रहा। विद्योत्तमा की वह पीड़ा शाप बनकर आज कामिनी के रूप में एक अबला, असहाय नारी के हाथों फलित हुई।

अंतिम समय में वह मित्र कुमारदास को याद करते हैं। मित्र के देश आकर भी वह उससे भेंट न कर पाए इस दु:ख के साथ हमेशा के लिए प्रस्थान कर जाते हैं। इस बात को सुनकर कामिनी तथा राजम्मा को यह पता चलता है वे कालिदास हैं। कुमारदास के मित्र। यह सब जानकार कामिनी को एहसास होता है कि क्या छल-कपट से वह कुमारदास को कभी पा सकेगी? यह सब सोचकर वह विषप्राशन कर खुद को समाप्त करती है। कुमारदास को कामिनी के भवन में कालिदास के होने की सूचना मिलती है। वह आनंदविभोर होकर पहुँचते हैं। वहाँ तो कामिनी और कालिदास शेष हो चुके हैं। सारी घटनाएँ खुलकर सामने आने के बाद वह विक्षिप्त से हो जाते हैं और कालिदास की चिता में विलीन हो जाते हैं। किंतु शेष पड़ा रह जाता है कामिनी का शव। उसकी ओर किसी का ध्यान भी नहीं जाता। उसके शव का इतना तिरस्कार, उसकी प्रेम की पीड़ा को अनदेखा किया गया है। नाटककार ने राजम्मा के द्वारा इस पीड़ा को प्रखर रूप में व्यक्त किया है, 'अमर हो गए कालिदास...अमर रहेंगे कुमारदास...अमर! पर पुत्री, तू जहाँ थी वहीं रही...तेरा शव लेने भी कोई न आया। उसका वही तिरस्कार हुआ जो हमारी अंतिम नियति है...रही

है युग-युग से...रहेगी युग-युग तक...कालिदास को दिया विष सबको स्मरण रहेगा, पर कुमारदास को पाने की तेरी आकुल तड़प कोई न समझ पाएगा। कोई नहीं...विष...विष तो हम कबसे पीती आयी है। प्रवंचना का विष...उपेक्षा का विष...तिरस्कार का विष...न जाने कब तक पीती रहेगी... विष!'[13] अनादि अनंतकाल से वेदना का विषप्राशन करनेवाली स्त्रियों की पीड़ा को राजम्मा के आक्रोश द्वारा नाटककार ने समाज के समक्ष रखा है।

सच ही तो है। विद्योत्तमा हो या कामिनी यह प्रतिनिधि है 'स्त्री' समाज की जो उपेक्षित जीवन की पीड़ा को युगों-युगों से सहती आ रही है। एक ओर कामिनी अपने प्रेम को पाना चाहती थी, सिंहलनरेश की वामा बनना चाहती थी। क्या वह सुखमय जीवन की कामना करने की हकदार नहीं थी? दूसरी ओर है विद्योत्तमा जो अपने समान बुद्धिमान पति की चाहत रखती है इस कारण वह कालिदास की उपेक्षा करती है। वही प्रेरणा पाकर विक्रमादित्य के नवरत्नों में सम्मान पाकर पत्नी को गुरु के रूप में स्वीकार कर उसकी उपेक्षा करता है। स्त्री चाहे विदुषी हो या गणिका उपेक्षित ही रहती है, 'स्त्री कभी भोग लगाकर त्यागी जाती है तो कभी देवी बनकर प्रस्तापित कर त्यागी जाती है।'[14] उपेक्षा पर हर स्थिति में होती है। स्त्री-पुरुष के संबंध का यह रूप अनंतकाल से वर्तमानकाल तक उसी रूप में विद्यमान है। नाटककार के अनुसार, 'कालिदास की विद्योत्तमा हो अथवा महात्मा गांधी की जीवनसंगिनी 'बा' हो, उन्हें गुरु अथवा देहविहीन श्रद्धेया आर्किटाइप बनाने का पुरुष का एकपक्षीय फैसला समानता के मूल्यों का उपहास है।'[15] नाटककार इतिहास को समक्ष रख दुर्लक्षित स्त्रीपात्रों को समकालीनता से जोड़ते हुए न्याय देने का प्रयत्न करती दिखाई देती है।

विद्योत्तमा विदेशी होने के कारण पुरुषवर्ग से छली जाती है। षड्यंत्र के तहत उससे बदला लिया जाता है। मूढ़ कालिदास से विवाह करवाकर उसके वैदुष्य के गर्वहरण करने के लिए। 'यह बदला था स्त्री की मेधा से। एक अन्य स्थिति में उसी कामना उद्वेलित स्त्री को, जो अब केवल नारी नहीं पत्नी भी थी, दोबारा छला गया, यह कहकर कि उसी की सत्प्रेरणा ने जड़बुद्धि कालिदास को कवि कालिदास के शिखर तक पहुँचाया है, अत: अब वह गुरुवत् है। कामना का आलंबन नहीं बन सकती। यानी नारी, बुद्धि अथवा देह किसी भी स्तर पर चुनाव के लिए स्वतंत्र नहीं। पति-पत्नी संबंध में भी उसे पारस्परिक उभयपक्षीय चुनाव का विशेषाधिकार प्राप्त नहीं होता।'[16] हमारा समाज उसे हमेशा निर्णय लेते समय परे रखता है या फिर कभी बौद्धिक स्तर पर यह स्वीकार ही नहीं करता कि वह भी 'मनुष्य' है और निर्णय लेने का अधिकार उसे भी है। हमेशा उसे आश्रिता के रूप में देखा गया है। 'नच स्त्री स्वातंत्र्य महार्ति' की मोहर लगाकर उसे सर्टिफाइड कर दिया गया है। वास्तव में, 'साहित्य और इतिहास ने उस प्रज्ञावान नारी के दंश को अनदेखा किया जो बुद्धिमती होने के लिए यानी एक ही अपराध के लिए दो बार दंडित की गई। हमारे समाज ने नारी को कभी परिपूर्ण नहीं होने दिया, परिपूर्ण नहीं देख सका। या तो वह सदैव अबला रही या फिर विदेह देवी। यानी केवल देह अथवा केवल प्रज्ञा!'[17] मीराकांत जी यह बताने का सफल प्रयास करती हैं कि प्रज्ञा के कारण विद्योत्तमा और देह के कारण कामिनी छली गयी। कामिनी के प्रेमपक्ष को उपेक्षा ही सहनी पड़ी। उसकी पीड़ा जो केवल एक स्त्रीमन की पीड़ा है, उसे अनदेखा किया गया। 'गणिका कामिनी को प्राय: सभी ने लोभी, स्वार्थी, कुटिल ही कहा है। नि:संदेह, उसका यह कृत्य बताता है कि वह लोभी रही होगी, स्वार्थी रही होगी, कुटिल रही होगी, दुष्ट रही होगी, पर उन स्थितियों का क्या कहा जाए जो एक स्त्री को ऐसा होने पर मजबूर

 ISSN 0975-735X

कर देती हैं।'[18] गणिका के माध्यम से स्त्री की दुर्दशा को दर्शाना कोई अभिनव प्रयोग नहीं है। परंतु कालिदास की मृत्यु की घटना जितनी भी प्रकाश में आयी, एकल ही रही। कामिनी के पक्ष की ओर किसी का ध्यान ही न गया। पुरुषसत्तात्मक समाज से और अपेक्षा भी क्या की जा सकती है, 'सैकड़ों वर्ष बाद आज जब हम स्त्री-विमर्श के कोण से स्थितियों का पुनरवलोकन करते हैं, मानव-अधिकार के आलोक में उन्हें देखते हैं तो भला इस घटना का दूसरा पक्ष यानी कामिनी और उसकी मनोदशा को कैसे नकारा जा सकता है; क्योंकि किसी की भी मनोदशा का आधार नि:संदेह व्यक्तिगत, पारिवारिक और कुल मिलाकर सामाजिक व्यवस्था ही होती है।...बौद्धकाल के सैकड़ों वर्ष बाद आर्थिक रूप से स्वतंत्र कामिनी ने भी इस समाज की संरचना के स्थापित नियमों के अनुसार अपने दोयम दर्जे की स्थिति को त्याग, विवाह की संस्था में प्रवेश कर अपनी परतंत्रता से तथाकथित मुक्ति का सपना देखा होगा। हमारी जेलों में वर्षों से सजा काट रही हैं ऐसी असंख्य अपराधनियाँ, जिन्हें दोषी ठहराकर सामाजिक दृष्टि व ध्यान से परे फेंक दिया जाता है। चर्चा होती है तो मात्र उनके अपराध की, उन्हें अपराधी बनाने वाली स्थितियों की नहीं। इस पक्ष पर विचार क्यों नहीं होता कि स्त्रियों द्वारा किए गए अपराध प्राय: स्त्रियों पर किए जाने वाले अपराधों का ही प्रतिरूप होते हैं।'[19] नाटककार स्थितियों की ओर इशारा कर भद्र समाज के मौन पर प्रश्नचिह्न लगाती हैं। वर्तमान समय में हम उत्तर आधुनिकता की बात करते हैं, अपने आपको सभ्य कहे जाने वाले समाज की श्रेणी में प्रथम पंक्ति में स्थान भी पा लेते हैं।

एक और 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवता' कहकर उसे देवी रूप में स्वीकारते हैं तो दूसरी ओर 'अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी, आँचल में दूध है और आँखों में पानी' कहकर उसकी दयनीय दुर्दशा का चित्रण करते हैं, पर जब उसके मानव-अधिकार की बात आती है तब हम चुप्पी साध लेते हैं। आखिर कब टूटेगी यह चुप्पी? कब टूटेगा यह अनादि अनंत युगों से चला आ रहा मौन? कब वाचा फूटेगी उसकी वेदना पर? कब दिए जाएँगे उसके प्रश्नों के उत्तर जिसकी प्रतीक्षा में वह युगों-युगों से न्याय मिलने की अपेक्षा में प्रतीक्षारत है? न्यायदेवता की आँखों की पट्टी कब खुलेगी? कब उसके उपेक्षित, असहाय पीड़ा के पक्ष की ओर भी मानवीय करुणा की दृष्टि से देखा जाएगा? कब उसे समानता का अधिकार मिलेगा? केवल संविधान में अधिकार देने से वह मिल नहीं जाते उसके लिए वह मानसिकता कब पैदा होगी जो उसे मन-मस्तिष्क से समानता का अधिकारी समझेंगे?

इस ऐतिहासिक परिदृश्य के नाटक द्वारा ऐतिहासिक पर जनश्रुतियों पर आधारित कामिनी और विद्योत्तमा जैसे पात्रों को प्रतिनिधि बनाकर वर्तमान समय में नाटककार को अनगिनत अनुत्तरीय प्रश्नों के उत्तर की प्रतीक्षा है...

संदर्भ

1. कंधे पर बैठा था शाप, मीराकांत, पुस्तक के फ्लेप से
2. वही, पृ॰ 11
3. वही, पृ॰ 12
4. वही, पृ॰ 17
5. वही, पृ॰ 23
6. वही, पृ॰ 42
7. वही, पृ॰ 43

8. वही, पृ॰ 44
9. वही, पृ॰ 54
10. वही, पृ॰ 55
11. वही, पृ॰ 55
12. वही, पृ॰ 56
13. वही, पृ॰ 60
14. हिंदी नाट्य साहित्य में महिला रचनाकारों का योगदान, डॉ दीपा कुचेकर, पृ॰ 63
15. कंधे पर बैठा था शाप, मीराकांत, पृ॰ 17
16. वही, पृ॰ 17
17. वही, पृ॰ 17
18. वही, पृ॰ 15
19. वही, पृ॰ 15

Dr. Shaikh Afroz Fatema
Head of Dept. Hindi
Maulana Azad College of Arts, Science & Commerce,
Aurangabad (Maharashtra) 431008
Mob. No.9423247784
skafrozfatema@gmail.com

 ISSN 0975-735X